

## समकालीन हिंदी सिनेमा में स्त्री मानसिकता

(आलेख)

लेखक -

डॉ. सुधीर सोनी

अध्यक्ष, हिंदी विभाग,  
राजकीय महाविद्यालय, मालपुरा,

Email: -----

**सारांश(Abstract):-** एक समाज में भिन्न-भिन्न आचारों व्यवहारों के लोग रहते हैं। उनकी पारम्परिक भिन्नताएँ जब वैचारिक और भावनात्मक मतभेदों को प्रस्तावित करती है जब वे जीवन मूल्यों से जुड़ जाती है। स्वार्थ यूँ तो मानव की सहजात प्रवृत्ति है। व्यक्तिगत या सामूहिक स्वार्थ जब व्यक्ति और समाज के सम्बन्धों से टकराकर उसके सहज प्रवाह में बाधा उत्पन्न करते हैं तब सामाजिक तनाव आकार ग्रहण करने लगते हैं। सामाजिक संक्रमण की स्थिति में इन तनावों के माध्यम से व्यापक सामाजिक परिवर्तन अपना स्वरूप निर्धारित करते हैं। आधुनिक बोध तथा आधुनिकता से विभिन्न सोपानों के साथ जुड़कर ये तनाव (सामाजिक) परिवर्तन के वाहक बनते हैं। एक स्त्री अपने व्यक्तित्व के 'उत्स' की सम्पूर्णता के कारण इनके अन्य क्रमों की अपेक्षा अधिक तीव्रता से सम्बन्धित होती है।

**keywords :** लोकसाहित्य, दरअसल, लोकभाषा, आलोचना

एक समाज में भिन्न-भिन्न आचारों व्यवहारों के लोग रहते हैं। उनकी पारम्परिक भिन्नताएँ जब वैचारिक और भावनात्मक मतभेदों को प्रस्तावित करती है जब वे जीवन मूल्यों से जुड़ जाती है। स्वार्थ यूँ तो मानव की सहजात प्रवृत्ति है। व्यक्तिगत या सामूहिक स्वार्थ जब व्यक्ति और समाज के सम्बन्धों से टकराकर उसके सहज प्रवाह में बाधा उत्पन्न करते हैं तब सामाजिक तनाव आकार ग्रहण करने लगते हैं। सामाजिक संक्रमण की स्थिति में इन तनावों के माध्यम से व्यापक सामाजिक परिवर्तन अपना स्वरूप निर्धारित करते हैं। आधुनिक बोध तथा आधुनिकता से विभिन्न सोपानों के साथ जुड़कर ये तनाव (सामाजिक) परिवर्तन के वाहक बनते हैं। एक स्त्री अपने व्यक्तित्व के 'उत्स' की सम्पूर्णता के कारण इनके अन्य क्रमों की अपेक्षा अधिक तीव्रता से सम्बन्धित होती है। सोरोकिन ने अपने ग्रन्थ 'सामाजिक तथा सांस्कृतिक गतिशास्त्र' में स्पष्ट किया है कि क्रांति के सम्बन्ध में सबसे महत्वपूर्ण तथ्य किसी समाज के लक्ष्यों और मूल्यों में बहुत अधिक गडबड़ी, अस्थिरता और अनिश्चितता है। वह मानता है कि आंतरिक अशांति से उत्पन्न और विस्फोट होन की अनिवार्य और मुख्य दशा सामाजिक या सांस्कृतिक प्रणाली का चंचल होना है।<sup>1</sup> मूल्यों में व्यापक अराजकता जब सामाजिक तनावों के मूल में विद्यमान रहती है तो सामाजिक परिवर्तनों या सामाजिक क्रांति की पृष्ठभूमि निर्मित हो जाती है-

'मुश्किल होगा

एक दिन

अपना दुख किसी से कहना

बचेगा बिना किसी के सामने

सिर झुकाएँ

तुम कर सको प्रार्थना भी।"<sup>2</sup>

इस पृष्ठभूमि में न किसी प्राप्ति पर दुख की अनुभूति है न किसी उपलब्धि पर कोई प्रतिक्रिया। सिनेमा ने कई बार प्रतिबद्धताओं के साथ ऐसी विभिन्न स्थितियों का विश्लेषण किया है साथ ही उनमें असीम सम्भावनाओं को भी तलाशा है। विभिन्न सिनेमाओं में अपनी मनोवृत्ति को उन्होंने अंधकार की स्थितियों से तुलनात्मक रूप में प्रस्तुत किया है। वे चाहते हैं कि स्थितियों का जब तक स्वरूप परिवर्तित नहीं हो उनमें रहना उसकी नियति है। इसीलिए वे दीपक की लौ बुझने पर अपनी स्थिति को अभिव्यक्ति करने का पक्षधर है।

आज का युग आधुनिकता का युग है। यह आधुनिकता अपने में कई जटिल अर्थ सन्दर्भ समेटे हुए है। इसके विकास की भी अपनी प्रक्रिया है जो आधुनिकता को समझने का मूलभूत आधार है। आधुनिकता की यूँ भी क्षेत्र-साक्षेप अलग अलग अवधारणाएँ हैं जो किसी विचार बिन्दु पर संकमित नहीं हो पाती है। इसलिए 'स्त्री-परिप्रेक्ष्य' में विश्लेषण करे तो हम लक्ष्य को व्यापकता दे सकते हैं। भारतीय सिनेमा पर लगातार आक्षेप लगता रहता है कि पर्दे पर दिखाई जा रही स्त्री का स्वरूप श्रृंगारिकता और सौंदर्य की आड़ में पुरुषों के चाक्षुष भोग का बिंब बनाया जा रहा है।

वर्तमान समाज में आधुनिकीकरण आधुनिक बोध एवं आधुनिकता वैज्ञानिक एवं तकनीकी विकास के विचार - दृष्टि में रूपांतरित होने की एक क्रमिक प्रक्रिया है। सामान्य रूप में परम्परागत समाज से तकनीकी समाज की ओर विकास ही आधुनिकीकरण है। शिक्षा के व्यापक प्रसार, नगरीकरण, विज्ञान और तकनीकों से जीवन पद्धति का रूपांतरण, अर्थ व्यवस्था में मौलिक बदलाव, जीवन स्तर में गुणात्मक परिवर्तन आदि से हम किसी समाज के आधुनिकीकरण की जाँच पड़ताल कर सकते हैं। हालांकि आधुनिकीकरण सभ्यता के ऊपरी स्तर को ही प्रभावित करता है। स्त्री परिप्रेक्ष्य एवं वस्तुगत स्थितियों को दृष्टिगत रखते हुए इसे प्रायः पश्चिमीकरण से जोड़ दिया जाता है। "किन्तु यह ठीक-ठीक पश्चिमीकरण नहीं है। क्योंकि हर देश में उसे परिवेश परम्पराओं और संस्कृतिकी आवश्यकताओं के अनुरूप होता है।<sup>3</sup> आधुनिकीकरण केवल विकसित देशों का अनुकरण नहीं बल्कि चेतन रूप में किन्ही सामाजिक राष्ट्रीय स्थितियों में परिवर्तन लाने की अपरिहार्यता भी है।

कहा जाता है कि भारतीय दर्शक एक फिल्म को एक विशिष्ट तरीके से देखते हैं। वे एक फिल्म में कुछ खास चीजें देखना चाहते हैं। भारत में फिल्म देखने को निजी तौर पर डेट पर जाने या कुछ घंटों के एकांत का आनंद लेने या स्क्रीन पर अवतरित हो रही शानदार घटनाओं में खुद को खोने के बारे में नहीं है। हालांकि इसमें ऐसे सभी अनुभवों के घटक शामिल हैं। मुख्य रूप से यह एक बड़े पैमाने पर अनुभव एक बड़े समूह परिवार के अनुभव के लिए है, जो कुछ घंटों के लिए अलग है। थिएटर में फिल्म देखते समय, कई सवाल पर विस्तार से जानने की जरूरत है - वे कौन से दृश्य हैं, जिन पर दर्शक सीटी बजाते हैं? कौन से संवाद पर थिएटर जोर की हूटिंग से गुंजाता है?

1970 - 80 के दशक के दौरान सिनेमा में हीरोइन और वैम्प के चित्रण के बीच एक स्पष्ट रेखा देखी गई। आमतौर पर 'आदर्श' महिला को विनम्र, शर्मीली, आश्रित, नाजुक होने के लिए ही चित्रित किया गया था, जो आमतौर पर साड़ी में लिपटी होती थी। जबकि उसी समय के लोकप्रिय वैम्प ने आउटफिट्स को अलग ही अंदाज में प्रस्तुत किया, जो अप्रतिम रूप से उजागर हुआ। उस समय के प्रसिद्ध वैम्प - बिंदू, अरुणा ईरानी और हेलेन ने एक उपन्यास चरण का बीड़ा उठाया है। वे नारी की दूसरी छवि बनकर उभरीं, जिन्हें सेल्युलॉइड पर धूम्रपान करने, पीने और पूर्व-वैवाहिक यौन संतुष्टि में संलग्न होने के लिए दिखाया गया था। इस तरह की गतिविधियाँ इस बात का संकेत थीं कि इन महिला पात्रों में संदिग्ध नैतिकताएँ थीं। हालाँकि एक पुरुष अभिनेता को इसी तरह की हरकतें करते हुए माचो के रूप में चित्रित किया गया था।

कुछ उदाहरणों को छोड़कर, एक हीरोइन को नायक या प्रमुख व्यक्ति की तुलना में स्पष्ट रूप से बहुत कम स्क्रीन स्पेस प्रदान किया जाता है। एक अग्रणी महिला का कैरियर पुरुष की तुलना में काफी कम है। यह वृद्ध वीरता का साक्षी है जो अपनी किशोरावस्था से बाहर की महिलाओं के साथ रोमांस करता है, लेकिन इसके विपरीत शायद ही कभी होता है।

इसलिए, हीरो और हीरोइन, पारंपरिक रूप से 'अच्छाई' के अवतार और सरलीकृत भावनाओं और व्यवहारिक पैटर्न में बहुत अवतार हैं। विजुअल प्लेजर एंड नैरेटिव सिनेमा में, लौरा मुलवे ने दावा किया कि महिला पितृसत्तात्मक संस्कृति में पुरुष के लिए सांकेतिक के रूप में खड़ी है, जो एक प्रतीकात्मक क्रम से बंधी हुई है, जिसमें आदमी अपनी कल्पनाओं को जी सकता है, और भाषाई आदेश के माध्यम से उन पर जुनून ला सकता है। महिला की मूक छवि, अभी भी अर्थ के वाहक के रूप में उसके स्थान से जुड़ी हुई है, न कि अर्थ की निर्माता। इन विषय/सम स्थितियों के मध्य एक स्त्री का व्यक्तित्व क्या स्वरूप लेता है यह प्रस्तुत करती है यह रचना -

"मैंने अपने आपका

जिस किसी संख्या से गुणा किया

गुणनफल अपने आप से भी कम पाया।”<sup>4</sup>

ऐसे समय में स्त्री-वर्ग के जीवन मूल्य आधुनिकीकरण और आधुनिक बोध की वैचारिक परिणति हैं। ‘महामानव’ की भूमिका से लेकर ‘नए व्यक्ति’ के खुरदरे यथार्थ तक की यात्रा के वैचारिक क्षेत्र में नितान्त प्रवैगिक परिवर्तन हुआ है। विभाजन का यथार्थ, अपेक्षित अंचलों का यथार्थ, उपेक्षित पात्रों का यथार्थ, उपेक्षित गलियों का यथार्थ आदि के बीच मानसिकता के साथ सिनेमा ने भी विविध भूमिकाओं को प्रस्तुत किया है –

“मृत्यु से पहले और  
कविता के पहले  
वह फँसला करता है कि  
हम लोगों का अब शामिल नहीं  
होना है।”<sup>5</sup>

सिनेमा में प्रतिबद्धता रचनाकर्म का एक नया प्रतिमान स्वीकारा गया। प्रतिबद्धता की इस धारणा ने रचना के भावजगत में एक आधारभूत अन्तर पैदा कर दिया है। आक्रोश और विद्रोह के भाव में भी कुछ बुनियादी अन्तर हैं। आक्रोश एक तात्कालिक व संवेगात्मक भावदशा है वहाँ विद्रोह एक सुविचारित निर्णय है। किंतु वर्तमान में पनपा उपभोक्तावाद का पक्ष मौजूद असमानताओं को पाटने की जगह उन्हें उभारने का काम कर रहा है। “आज तक जिस व्यवस्था में जी रहे हैं वह अपने स्वत्व में बाह्य और भौतिक है किन्तु उसके प्रभाव को गति और दिशा आंतरिक है।”<sup>6</sup>

सिनेमा इस व्यवस्था के बाह्य और भौतिक स्वरूप तथा उसके प्रभाव की आंतरिक दिशा दोनों ही घुलनशीलता को सर्जनात्मक रूप में प्रस्तुत करता है। आधुनिक सिनेमा ने व्यक्ति और समाज के स्तर पर तनावों, अन्तर्विरोधों, विसंगतियों तथा विरोधाभासों को ही सम्पूर्ण संवेदनशीलता के स्तरों पर अभिव्यक्ति प्रदान की है। यह अभिव्यक्ति मूलतः और प्रमुखता सर्जनात्मक सिनेमा में पूर्ण जीवंतता के साथ प्रतिपादित हुई है। जवाहर लाल नेहरू ने प्रथम अंतर्राष्ट्रीय फिल्म महोत्सव के अवसर पर कहा था – “फिल्म का लोगों पर जबर्दस्त प्रभाव पड़ता है। वह उन्हें सही और गलत तरीके से शिक्षित कर सकती है। शैक्षिक फिल्में तथा वृत्तचित्र महत्वपूर्ण तो हैं, और उन्हें प्रोत्साहित भी किया जाना चाहिए, लेकिन दूसरी तरह की फिल्में भी लोगों को सही दिशा में जाने के लिए प्रेरित कर सकती हैं। मेरा यह मतलब नहीं है कि उन्हें सीधे – सीधे प्रचार फिल्मों की तरह बनाया जाना चाहिए। मैं कहना चाहता हूँ कि फिल्में जीवन के कलात्मक और सौंदर्यात्मक पक्ष का परिचय दें और जीवन के प्रत्येक पक्ष का सूक्ष्म उद्घाटन करें और दैनिक जीवन में छुपी सुन्दरता को उद्घाटित करें।”<sup>7</sup>

संपूर्ण स्त्री वर्ग के जीवन मूल्यों के रूप में सामाजिक तनावों को वस्तुगत स्तर पर ग्रहण नहीं किया गया है। बल्कि वे मानवीय संवेदनशीलता का आधार लेकर प्रस्तुत और अभिव्यक्त होते हैं। सामाजिक स्थितियों का यह ग्रहण साहित्य में एक प्रक्रिया का रूप धारण कर लेता है। “वस्तुतः सत्य को ऐन्द्रिय चेतनाओं के माध्यम से जानना उनको मानसिक स्तर पर आत्मसात करना तथा फिर रचनात्मक सृजनात्मक विधानों में बिंब प्रतीकों के माध्यम से उन्हें लौटाना।”<sup>8</sup> इस प्रकार आम स्त्री के जीवन मूल्यों से होता हुआ साहित्य, सामाजिक तनावों का अभ्यन्तरीकरण करता हुआ उनकी कलात्मक पुनः प्रस्तुति करता है। संवेदना को गहरे स्तर पर अनुभव कर रचनाकार स्वयं एक मानसिक तनाव से गुजर कर उसे आयाम देता है। साहित्यिक अवधारणा का आधार पर “आधुनिक कवि अपने विक्षोभ को एक भयानक आवेग के साथ प्रस्तुत करता है वह भाषा की पुनर्रचना के लिए भाषा को नष्ट करता है वह लय की तलाश में लय का संहार करता है। वह विचार की खोजन में विचार को रद्द करता है।”<sup>9</sup>

स्त्री वर्ग के जीवन मूल्यों की यही स्थापना उभरकर प्रतिमान बन उठती है सार्थक साहित्य का सार्थक सिनेमा का –

“जल गई है कोई कंदील मेरे भतर  
और शब्दों का मोम पिघलना  
शुरू हो गया है  
यों बहुत दिनों बाद

[उली खिड़की

कविता की।”<sup>9</sup>

स्त्री ने अपने जीवन मूल्यों को सामाजिक व्यवस्थाओं के अनुरूप ढाला ही है। साथ ही उसमें परिष्कार के निरन्तर उपाय भी किए हैं। किसी भी व्यवस्था को अपनाकर निरन्तर उससे बाधित होते रहना उसका स्वभाव नहीं है। वह तो नित ‘कर्म’ को प्रायिकता देकर उत्थान के नवीनतम सोपानों को आकार देने में संलग्न है। हालांकि स्वतन्त्रता के दो दशक बाद तक जिस सिनेमा का आविर्भाव हुआ वह स्वतन्त्रता उसके लिए मोहभंग की प्रक्रिया के बाद सामने आया एक अश्लील यथार्थ था। भयावह आर्थिक विषमता और सामाजिक पिछड़ेपन के वर्तमान में उसने पूंजीवादी शिकजे को दिनों-दिन गहराते देखा।

बेलिन्स्की ने कहा है कि आपके सौन्दर्य-बोध का आदि और अन्त मनुष्यके प्रति लगाव है। कलाकार के मानव के प्रति लगाव का परिचय उसके सौन्दर्य-बोधात्मक आदर्शों की मानव के सौन्दर्य-बोधात्मक आदर्शों के साथ निकटता ही देती है। कला निरपेक्ष नहीं होती। वह अच्छे बुरे से जुड़ी रहती है। जब वह कहीं प्रतिबद्ध नहीं होती तब भी किसी का समर्थन कर रही होती है। या किसी के विरोध में खड़ी होती है। हालांकि प्रत्येक समाज में दो प्रकार की विचारधाराएँ होती हैं – एक अपने स्वभाव और गहन सृजनात्मक द्वारा मनुष्य के लिए शांति और स्वतन्त्रता द्वारा मनुष्य के लिए शांति और स्वतन्त्रता के उच्च आदर्शों को लेकर उसके व्यक्तित्व का विकास करती हैं, और दूसरी झूठी तथा अमानवीय विचारों की पोषक संस्कृति के आत्मगत मूल्यों का प्रचार करती हैं। कलाकार को जागरूक होकर यह निर्णय करना होता है कि उसकी सृजनात्मकता किसके प्रति समर्पित हो। वह कला के किन आदर्शों को मूर्त रूप प्रदान करे। “क्योंकि महत्वपूर्ण कला में आदर्श की अवधारणा सौन्दर्य की अवधारणा से अभिन्न होती है। आदर्श की सुंदरता ही उच्च सौन्दर्य से सम्पर्क कराने वाली होती है।”<sup>11</sup>

रचना में विषय-वस्तु की सुन्दरता जीवन से मिलती है यथार्थ के परिवर्तन के लिए संघर्ष, संघर्ष में स्वयं परिवर्तित होते हुए मनुष्य, मनुष्य की मानसिक सम्पन्नता एवं नैतिक विकास तथा यथार्थ में जो सुंदर है, उसके प्रति उसकी तीव्र संवेदना और मानव अस्तित्व का प्रगतिशील अर्थ द्योतित करनेवाली स्थितियाँ ही वे बिन्दु हो सकते हैं जहाँ मनुष्य के प्रति लगाव रखने वाले कलाकार के सौन्दर्य-बोधात्मक आदर्श मानव जीवन के सत्त्यों के विरुद्ध नहीं होते। वे जब जीवन की कुरुप स्थितियों का चित्रण कर रहे हैं तब भी सुंदरता को स्वीकृति देते हुए उसके लिये संघर्ष कर रहे होते हैं।

फिल्म लाइफ इन ए मेट्रो में नायक शिखा एक विवाहित महिला है, और आठ साल की लड़की की माँ, परेशानी भरी शादी से गुजरती है, लेकिन इससे बाहर आने के लिए खुद को असहाय महसूस करती है। शिखा कहती है “कि वह अपने पति के साथ एक नर्क में रहती हैं। जिनसे उनकी भावनाएँ अब दूर – दूर तक जुड़ी नहीं हैं।”<sup>12</sup>

शिखा किसी तरह से इस तरह की कड़वाहट के साथ जी रही है। मर्द को बेहतर मानने और समझने की पूर्व-कल्पित धारणाओं के साथ दर्शकों को लगता है कि एक महिला कैसे काम करेगी, एक निश्चित परिस्थितियों में और अधिकांश हिंदी फिल्मों ऐसी धारणाओं को तोड़ने की हिम्मत नहीं करती हैं। विशेष रूप से, हिंदी व्यावसायिक फिल्मों ब्लॉकबस्टर हिट महिलाओं को आदर्श ‘या पारंपरिक रूप से माँ – बहन – पत्नी – बेटी – जैसी प्यारी सी भूमिकाओं में चित्रित करती हैं। फिल्म देखते समय, दर्शक महिलाओं को एक निश्चित तरीके से अनुभव करते हैं। स्त्री के जीवन मूल्य और हिन्दी सिनेमा दोनों परिवर्तित जीवन-दर्शन के द्योतक हैं। समाज और सामाजिक परिप्रेक्ष्यों का बदलना, बढ़ता दायरा जहाँ साहित्य की नवीन परम्पराओं का द्योतक है वहीं स्त्री मूल्यों की परम्परा का भी।

“वे आस्थाएँ  
तुमको दरिद्र करवायेंगी  
कि दैन्य ही भोगोगे  
पर, तुम अनन्य होगे।

प्रसन्न होंगे।”<sup>13</sup>

:द्विवादी सामाजिक संरचना में महिलाओं को अनिवार्य रूप से पारिवारिक और सामाजिक अपेक्षाओं के साथ बाध्य किया जाता है और यह इतने लंबे समय से जारी है, कि यह एक प्राकृतिक प्रक्रिया के रूप में अपनाया गया है। दुर्भाग्य से, महिलाओं को जीने के लिए परेशान किया जाता है, नैतिक कर्तव्यों के एक उच्च पद पर होने के नाते जो उनकी कच्ची कल्पनाओं, भावनाओं और अभिव्यक्तियों की हत्या करता है। तदनुसार, महिला कल्पनाएँ हिंदी सिनेमा में एक आवाज खोजने में विफल रहती हैं, क्योंकि उन लोगों के लिए जिन्हें खुले तौर पर खोज व चर्चा के लिए उपयुक्त नहीं माना जाता है। स्त्री के जीवन मूल्यों के साथ हिन्दी सिनेमा ने कहीं न्याय दिया है तो कहीं अन्याय। डॉ. नामवार के शब्दों में “कवियों को वे आँखें नहीं दिखाई पड़ती क्योंकि वे उनसे बचकर चलते हैं, यदि कभी इतफाक से उन आँखों से आँखें मिल भी गईं तो उनकी ज्योति से चौंधियाकर बंद हो जाती है।” प्रगतिशील कवि की तरह उनमें साहस नहीं कि उन आँखों में झॉककर जीवन को देख सकें। अहीर की निरक्षर लड़की चंपा, भोरई केवट, प्राइमरी स्कूल के मास्टर दुखरन सा, चना-चबैना खाने वाला चंद, चित्रकूट के बौद्ध यात्री वगैरह। कहीं-कहीं प्रयोगवादी कवि अपनी यथार्थवादिता व ईमानदारी दिखाने के लिए यौन वर्जनाओं एवं कुंठित वासनाओं का चित्रण करते हैं। साथ ही अन्य इसी प्रकार के हुनर का सहारा लेते हैं। जिससे उनके मन की नग्न व अश्लील मनोवृत्तियों का यथार्थ चित्रण होता है।

“आओ मेरे आगे बैठो  
जैसे बैठी होती काली  
काली नागिन दो जिह्वा वाली...  
उगलो जहर ओट पर।”<sup>4</sup>

चिदानंद दास गुप्ता का तर्क था कि चित्रकला की तुलना में संगीत और वास्तुकला पर पड़ने वाले प्रभाव सतही थे। पैली चाहे राजा रवि वर्मा की हो या लोक कला, यूरोप से आने वाली तकनीकों ने कलाकारों को नए प्रयोगों की ओर अग्रसर किया। भारतीय सिनेमा भी इससे अछूता नहीं रहा। “मधुबनी, उड़िया, बंगाल, तंजौर तथा कंपनी कला से जुड़े कलाकारों ने पाश्चात्य कला के प्रभावों को सोखते हुए नई परंपराएं कायम कीं।”<sup>15</sup> इसीलिए सिनेमा में पहली बार कंकरिट के पोर्च, चाय की प्याली, सायरन, रेडियम की घड़ी, चूड़ी का टुकड़ा, बाथरूम, कोशिए, गरम पकौड़ी, बॉस की टूटी हुई टट्टी, फटी ओढ़नी की चिड़ियों, बच्चे, बीमार पेड़, आदि का चित्रण हुआ है।

कुछ निर्देशकों ने मन की ‘भावुकता’ के स्थान पर बौद्धिकता की प्रतिष्ठा की। प्रयोगवादी सिनेमा में भावना को लिया गया किन्तु हर भावना के आगे एक प्रश्न चिह्न इंगित किया गया। इसे बौद्धिकता भी कहा जा सकता है। “चित्रकला की तरह अंतर्गृहण की प्रवणता सिनेमा में भी देखी गई, इसे फाल्क – वर्मा पद्धति के नाम से संबोधित किया गया।”<sup>16</sup>

मानव की सभ्यता व सामाजिक विकास का मूल स्रोत नारी है। समाज में नर नारी का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। सभ्यता और संस्कृति भी नारी – नर सम्बन्ध पर आश्रित है। अगर इन सम्बन्धों में समतामूलक भाव है तो सभ्यता का उत्कर्ष होता है और यदि विषमता व्याप्त है तो अपकर्ष अवश्यम्भावी है।

प्रजनन जीव का महत्त्वपूर्ण कार्य है। गर्भ धारण से लेकर संतान को जन्म देने तथा शिशु के सूझबूझ आने तक लालनपालन का मुख्य दायित्व स्त्री ही निभाती है। याज्ञवल्क्य मुनि का कथन है “जिस तरह चने अथवा सीप का आधार दल दूसरे से मिलकर पूर्ण होता है उसी प्रकार मनुष्य के सामने का खाली आकाश नारी के साथ मिलने से पूर्ण होता है।”<sup>1</sup>

टॉमस मूर का मतव्य है – “स्त्री रात का तारा और प्रभाव का हीरा है, वह तो ओस का कण है जिससे काँटों का मुँह भी हीरों से भर जाता है।”<sup>8</sup>

अनेक चिंतक यह मानते हैं कि सौन्दर्य तथा उसके रसास्वादन दोनों का ही तार्किक विश्लेषण और तर्क बुद्धिपरक वर्णन सम्भव नहीं है। वे इसे आंतरिक अनुभूतिका विषय मानते हैं, पर सौन्दर्य शास्त्र और यह भी स्त्री मानसिकता के सन्दर्भ में अत्यन्त व्यापकता लिए हैं। कला चेतना का कार्य कलात्मक सृजन है और कला बोध सौन्दर्य चेतना का कार्य है। कला चेतना सौन्दर्य चेतना की सर्वोच्च अभिव्यक्ति है।

“कोई कवि उमंग में डूबकर चित्त की समाधिस्थ अवस्था में जिस विषय पर कविता लिखता है उसे सुंदर ही मानता है। अतएव काव्य का सम्पूर्ण क्षेत्र कवि के सौन्दर्य-बोध से अभिन्न है।”<sup>9</sup>

अंग्रेजों ने यहाँ की परम्परागत सांस्कृतिक संरचना को समाप्त कर दिया। भारत के इतिहास में औरंगजेब के बाद का काल विकृत सामंती मूल्यों के विकास का काल रहा है। गदर के बाद अंग्रेजों ने यहाँ की जनता के आर्थिक शोषण एवं शासन व्यवस्था चलाने के लिए कल – कारखाने खोले। रेल, डाक, तार, अदालत एवं शिक्षा की व्यवस्था की पर उन्होंने सामंती ढाँचे को यथावत रखा। ऐसे सामंतों के संरक्षण में जिस कला चेतना का विसा हुआ और उस कला चेतना के द्वारा जो कलात्मक सृजन हुआ वह जीवन के ह्रासशील मूल्यों से जुड़ा है। इन मूल्यों ने स्त्री मानसिकता में भोग की प्रवृत्ति प्रमुख थी –

“मनुज रूप है अवतरयो तीन वस्तु को जोग।

द्रव्य उपाजर्जन, हरिभजन अरु कामिनी संग भोग।”<sup>2</sup>

“रीतिकाल के उत्तरवर्ती कवि नारी के इंद्रियोत्तेजक वासना युक्त रूप से वर्णन में नायिका भेद वाले लक्षण ग्रन्थों की सीमाओं का भी उल्लंघन कर गए हैं। इन कवियों का मन तरुनाई की आवती पर एड़ियों की ललाई, जाँघों की गुराई, नितंबों की पीनताई, कटि की खीनताई, नूपुरों की रुनझुन, झुम-झूमकनि और चारु जाँघनि के मचकनि के सौन्दर्य में रमता है।”<sup>2</sup>

उपभोक्तावाद और दैहिक प्रदर्शन के युग में यह ध्यान देने योग्य है कि सिनेमा का अंदरूनी एवं बाह्य दृष्टि विन्यास जेंडर के आधार पर बंटा होता है। व्यवसायिक दृष्टि से दर्शकों के सामने परदे पर देह को कितना और कैसे दिखाया जाता है, इसे अलग-अलग संसर अधिनियमों द्वारा निर्धारित किया गया। सिनेमाघर का पर्दा विषाल दर्पण है जिसे देखते हुए दर्शक न केवल आत्ममुग्ध हो जाता बल्कि उसकी दबी इच्छाएँ भी नायक के क्रियाकलापों में चरितार्थ होने लगती हैं। आत्मसातीकरण की इस नयी प्रक्रिया को मल्वी ने नया नाम दिया – स्कोपाफीलिया, यानी खुद को निहारने का आनंद।”<sup>2</sup>

सिनेमा ने अपने सामाजिक उत्तरदायित्व की पहचान कर कई फिल्मों में नारी पक्षों को समकालीन दृष्टि से न केवल विस्तार दिया बल्कि एक प्रतिरोध की अवधारणा भी विकसित की। वही समकालीन साहित्य ने इस कम में एक नवीन आधार तैयार किया। विष्व सिनेमा के पक्षों ने तो यहाँ तक कहा कि “वायरिज्म सिनेमा का एक अभिन्न अंग है जिसे सिनेमा की उत्तरजीविता तथा उसे एक राजनैतिक अस्त्र में बदलने के लिए अनिवार्य माना जा सकता है।”<sup>3</sup>

जान्सटन के अनुसार सिनेमा अपनी चिन्ह प्रणालियों द्वारा यथार्थ की मध्यस्थता करता है। सिनेमाई यथार्थ का मतलब है निर्धारित संहिताओं के इस्तेमाल द्वारा पात्रों – दर्शकों के निर्मित चरित्र को ढंकना।”<sup>4</sup>

किन्तु नारी की स्थिति और स्त्री मानसिकता का मुखर चित्रण ‘गुप्त जी के काव्य में मिलता है। उन्होंने रीतिकालीन दृष्टि जिसमें वे उपभोग की सामग्री मात्र मानी गई है से मुक्त करना चाहते हैं पर उन्हें परम्परागत सामंती आदर्शों में ही ढालना चाहते हैं, उन्हें आर्थिक दृष्टि से स्वावलम्बन प्रदान कर, स्वस्थ सामाजिक भूमिका नहीं प्रदान कर पाते। अतीत के प्रति गहरी ममता के कारण उन्हें वे नारियाँ पसन्द हैं जो पतिदेव में मति, गति तथा दृढ़ रति से युक्त हो। फिर भी वे नारियों की दुर्दशा से अनभिज्ञ नहीं हैं—

“अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी  
आँचल में है दूध और आँखों में पानी।”<sup>5</sup>

उन्होंने साहित्य में यशोधरा, उर्मिला, विधुता जैसी उपेक्षित नारियों को इसी उद्देश्य से प्रतिष्ठित किया है। प्रतिष्ठा देने का यही कारण विधुता में पारम्परिक मूल्यों के प्रति विद्रोह का स्वर मुखरित करता है। विधुता कृष्ण से मिलने का विरोध करने वाले अपने पति से ही विद्रोह करती है –

“वृत्तियों का उन कुछ स्त्रियों के प्रति  
अश्लील रहो तुम  
फिर भी श्रोत्रिय, होत्रिय ठहरे,  
क्यों न सुशील रहो तुम।”<sup>2</sup>

उन्होंने उन स्थितियों की पड़ताल की है जिनके कारण पुत्रियों का जन्म ही शोक का कारण माना जाता है।

पंत की 1922 में लिखी 'नारी रूप' सिनेमा में नारी को देवि या 'सहचरी प्राण' के रूप में सम्बोधित किया गया है। वे नारी रूप की अलौकिकता का दिग्दर्शन कराते हुए कहते हैं—

“तुम्हारा यह स्वर्गिक श्रृंगार  
स्वर्ण का सुरक्षित भार  
मलिन्दों से उलझी गुंजार  
मृणालों से मृदु तार।”<sup>2</sup>

सिनेमा में नारी और दृष्टि विन्यास के विविध पक्षों के बाद भी यह महत्वपूर्ण है कि हिंदी सिनेमा में इनके संदर्भ बिंदुओं को ढूँढा जाए। सिनेमा में नारी बिंब को मूल उद्देश्य स्कापोफीलिया को सुगम बनाना है। किसी भी निर्माता के सामने यह यक्ष प्रश्न है कि वह निहारने की प्रवृत्ति को कैसे वैधानिक तौर पर सफल बनाए? “ताकि राज्य, नागरिक, समाज व नारी दर्षक असहज न महसूस करें”।<sup>2</sup>

हिंदी सिनेमा के दर्षक अलग-अलग सांस्कृतिक समुदायों, वर्गों, जातियों, तथा अंचलों से ताल्लुक रखते हैं। सिनेमा दर्षकों में स्त्री और पुरुष दोनों ही होते हैं। किंतु तमाम मानसिकता और परिवेश वाले लोगों की जगह सिने निर्माताओं ने एक ऐसे सूत्र के विकास की अवधारणा पर बल दिया जिससे सभी वर्गों के लोगों को चाक्षुष संतुष्टि मिल सके। “एक ही आख्यान के भीतर करुणा तथा श्रृंगारिकता को सम्मिलित कर हिंदी सिनेमा लिंग के आधार पर बंटे दृष्टि विन्यास को अर्थहीन बनाने का प्रयास करता है”।<sup>2</sup>

किंतु नारी के लिए मार्ग का चयन अत्यंत दुष्कर है। “वह जहां एक ओर उत्पाद है वहीं दूसरी ओर उपभाक्ता भी। इसलिए उसकी मजबूरी है कि वह स्त्री देह के व्यापारीकरण को पर्दे पर देखे”।<sup>3</sup>

प्रत्येक सिने निर्माता चाहता है कि उसकी फिल्म बॉक्स ऑफिस पर सफल हो। सिने निर्माण प्रक्रिया में बॉक्स ऑफिस ही प्रत्येक निर्माण की कसौटी है। इसीलिए हिंदी सिनेमा को फूक-फूक कर कदम रखना होता है। इसीलिए आख्यानात्मक संरचना के अंदर भिन्न-भिन्न दर्षक समूहों के लिए विविध आकर्षणों को समेकित रूप से सिनेमा में एक स्थान पर जुटाया जाता है। किंतु नारी में आत्माभिमान है वह कहती है “क्या मैं सचमुच केवल मोम की पुस्तिका, कोमल, हूँ? मुझमें वही उत्ताप है, मैं भी एक प्रखर ज्वाला हूँ।”<sup>3</sup>

लेकिन वह भी पुरुष को त्याग नहीं सकती और पुरुष उसे त्याग नहीं सकता। इसी प्रकार समाज में दोनों के अस्तित्व के बिंब लगभग पूरे विष्व में एक ही मनोदशा को अभिव्यक्त करते हैं। सिल्वर मैन हॉलीवुड की क्लासिक कही जाने वाली फिल्मों का जिक्र करते हुए बताती हैं कि इनमें स्त्रियों को रोते, हांफते, कलमते, सिसकते, सुना जा सकता है। “हॉलीवुड तक की फिल्मों से आधिकारिक स्वर पूरी तरह से गायब है, इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि शायद स्त्री की ‘आत्मगतता’ भी यही है”।<sup>2</sup>

यह प्रश्न अत्यन्त विवादास्पद है कि प्रकृति अपने आप में सौन्दर्यमयी है अथवा मनुष्य ने अपनी चेतना के विकास के साथ साथ उसमें अधिकाधिक सौन्दर्य देखता है। सौन्दर्यानुभूति अनुभूति का ऐसा विशिष्ट रूप है जो ऐन्द्रिक अनुभूति की सीमा में रहते हुए भी हमारे चिंतन से अभिन्न है। अतः प्रकृति के सौन्दर्य की वास्तविकता का प्रश्न उठते ही हम यह कहने लगते हैं कि इस वास्तविकता को न तो हम किन्ही यंत्रों की सहायता से नाप सकते हैं न किसी प्रकार तौल सकते हैं। पर्याप्तता इसी में है कि हम इस वास्तविकता को केवल बुद्धि और अनुभूति से प्रत्यक्ष कर सकते हैं। आषा कस्बेकर के अनुसार तमाम विरोधाभासों से निपटने के लिए हिंदी सिनेमा एक आदर्ष नैतिक ब्रह्माण्ड रचता है। जिसमें औपचारिक रूप से स्त्री की मर्यादा का उल्लंघन न हो। किंतु अनौपचारिक रूप से पुरुषों को श्रृंगारिक आनंद प्राप्त हो सके। “इसके लिए सिनेमा में वह अनेक प्रकार की रणनीतियां तैयार करता है, जैसे नृत्य गीतों के जरिए देह का प्रदर्षन”।<sup>3</sup>

इस प्रकार के सिनेमाई पक्ष जहाँ समाज के मनोभाव की भूमिका को बताते हैं वहीं स्त्री-मानसिकता की परतें भी उघड़ती चली जाती हैं। प्रगतिशील चेतना के कलाकार की दृष्टि भूत, वर्तमान, भविष्य तीनों पर एक साथ रहती है। भूत उसे आधार प्रदान करता है वर्तमान मिथ्या अतीत से टक्कर लेता है और उसे भविष्य की स्पष्ट रूप-रेखा दिखाई देती है। अतः उसकी कृतियों में नए समाज की रचना का स्वप्न देखने वाले अपने विनाश पर दुःखी होते, उसी को अपने जीवन की सार्थकता मानते हैं। ऐसे कलाकारों की रचनाओं का लक्ष्य ही मनुष्य की सबसे मूल्यवार व्यक्तिगत योग्यताओं का सतत् विकास करना होता है।

-----00-----

## संदर्भ ग्रंथ सूची

1. Social and Cultural Dynamics Vol.III, Page 499 "The main and indispensable condition for an eruption of internal disturbances is that the social system on the cultural system or both shall be unsettled."
- 2- अशोक वाजपेयी, मुश्किल होगा, पृ. 28
- 3- ग्रेवाल, युग परिबोध (मई 76), पृ. 75
- 4- राजेश जैन, रोशनी के खेतों में, पृ. 68
- 5- राजकमल चौधरी, मुक्ति प्रसंग, पृ. 25
- 6- जयसिंह नीरज, आधुनिकता के हाशिए में उर्वशी, पृ. 19
- 7- जवाहर लाल नेहरू, प्रथम अंतर राष्ट्रीय फिल्म महोत्सव, 24 जनवरी, 1952
- 8- गंगा प्रसाद विमल आधुनिकता साहित्य के सन्दर्भ में, पृ. 193
- 9- श्रीकांत वर्मा, जिरह, पृ. 102-103
- 10- हेमंत शेष, अशुद्ध सारंग, पृ. 11
- 11- सौन्दर्य की अवधारणा, उत्तर प्रदेश (मई 95), पृ. 16

- 12- लाइफ इन मेट्रो , निर्देशक – अनुराग बसु , प्रदर्शन – मई,2007
- 13- पूर्वग्रह, अंक 39-40] पृ. 8
- 14- आर.सी. प्रसाद, हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियाँ, पृ. 535
- 15- चिदानंद दास गुप्ता , फॉर्म एण्ड कोंटेंट , इन फ्रेम्स ऑफ माइंड, रिफ्लेक्शन ऑन इंडिया सिनेमा , अरुणा वासुदेव , यूबीएसपीडी. , दिल्ली , 1995 ] पृ. 104
- 16- – वही –
- 17- मृदुला गर्ग, छायावादी, कवियों की नारी भावना, पृ.35
- 18- रामकुमार वर्मा, कुलललना, गद्यभाग, पृ. 148
- 19- डॉ. वल्लभदास तिवारी, हिन्दी काव्य में नारी, पृ. 157
- 20- शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ. 27
- 21- तिवारी, हिन्दी काव्य में नारी, पृ. 203
- 22- लौरा मल्वे , विजुअल प्लेजर एवं नरैटिव सिनेमा , मूवीज एण्ड मैथड्स , वॉल्यूम – 2 ] यूनिवर्सिटी ऑफ कैलीफोर्निया प्रेस , बर्कले , 1985 ]पृ.307
- 23- क्लैयर जॉन्सटन , टुवर्ड्स ए फ़ैमिनिस्ट फिल्म प्रेक्टिस : सम थीसिस इन बिल निकोल्स मूवीज एण्ड मैथड्स , पृ. 317
- 24- हॉलीवुड की संहिताएं इस प्रकार हैं – रेखीय निरंतरता के लिए संपादन जो जाहिर न हो । कैमरे तथा एक्शन का क्षेत्र 180 डिग्री अक्ष रेखा में होना चाहिए । आई लाइक मैच ताकि स्पेस की निरंतरता कायम रहे । कैमरे के कोण को किसी भी स्थिति में 30 डिग्री से अधिक न होने देना अथवा दर्शकों को दृष्टिभ्रम हो सकता है ।
- 25- मैथिलीशरण गुप्त, यशोधरा, पृ. 69
- 26- वही, द्वापर, पृ. 25
- 27- सुमित्रानंदन पंत ग्रंथावली, खण्ड चार, पृ. 337
- 28- आषा कर्बेकर , हिडन प्लेजर नेगोषिएटिंग द मिथ ऑफ द फीमेल आइडियल इन पॉपुलर हिंदी सिनेमा , इन प्लेजर एण्ड दी नेषन , ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस , दिल्ली , 2001 ] पृ. 286
- 29- वही, पृ. 289
- 30- मेरी एन , द इकॉनामी ऑफ डिजायर , मूवीज एण्ड मास कल्चर , एथलोन प्रेस , लंडन , 1996 ] पृ.119
- 31- वही, पृ. 159-60
- 32- काजा सिल्वर मैन , द एकास्टिक मिरर : द फीमेल वॉइस इन साइकाएनालिसिस एण्ड सिनेमा , इंडियाना यूनिवर्सिटी प्रेस , ब्लूमिंगटन , 1988 ] पृ. 309
- 33- आषा कर्बेकर , हिडन प्लेजर : नेगोषिएटिंग द मिथ ऑफ दी फीमेल मॉडल इन पॉपुलर हिंदी सिनेमा , ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस , दिल्ली , 2001 ]पृ. 286

-----00-----